संस्मरण

इस अंधेरी रात में दीया जलाए कौन बैठा है ?

नंद चतुर्वेदी

शिक्षा विमर्श का यह अंक गांधी के शिक्षा चिन्तन पर केन्द्रित है। गांधी जी के व्यक्तित्व और चिन्तन का प्रभाव उस समय केवल राजनैतिक आन्दोलनकारियों पर ही नहीं था बल्कि आम व्यक्तियों के जीवन पर भी गहरा प्रभाव था। आजादी के बाद भी गांधी के चिन्तन के प्रभाव में समाज की दिशा को तलाशने के प्रयास जारी रहे हैं। यह संस्मरण दूर-दराज में गांधी के प्रभाव की अनुगूंज को अभिव्यक्त करता है।

गांधीजी की हत्या को 50 वर्ष होने वाले हैं, तब भी मैं उन्हें एक पल के लिए नहीं भूलता हूं और न ही उनकी नृशंस हत्या को। गांधी के लिए बच्चनजी ने एक अविस्मरणीय पंक्ति लिखी है, 'इस अंधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है।'

मेरे मन में यह सवाल हमेशा घूमता है कि गोडसे गांधी से क्यों डरता था ? मैं बहुत आश्चर्य करता हूं कि एक निहत्थे आदमी से और उस आदमी से जिसे अहिंसा से प्यार हो और जिसके पास न राज्य सत्ता हो और न समानांतर शक्ति, उसकी ताकत कहां होती है ? खुद निडर रहकर दूसरों को डराने की।

गांधी-हत्या के समय मेरी उम्र पच्चीस वर्ष की थी। मैं महाराष्ट्र के एक कस्बे में हेडमास्टर था जो जलगांव और भुसालव के बीच में था और जिसके चारों तरफ फलों के बगीचे थे। बड़े-बड़े पत्तों वाले केले के बाग और पूरी सड़क के किनारे मौसंबी और संतरों के मोहक 'मले' थे। इस कस्बे का नाम नसीराबाद था। मैं महाराष्ट्र की संस्कृति और राजनीति के संबंध में कुछ नहीं जानता था। वास्तविकता तो यह थी कि महाराष्ट्र के कुछ संतों के नामों के अतिरिक्त मुझे महाराष्ट्र के एक भी राजनेता का नाम मालूम नहीं था। अब मुझे दुःख के साथ बहुत से राजनेताओं के नाम याद हैं लेकिन ज्यादा यकीन हो गया है कि समाज के शक्ति केन्द्र संत होते हैं।

मैं बूढ़ा और खुर्राट हेडमास्टर नहीं था जिसे एक जगह रहकर अपनी आयु के दिन गुजारने हों। मैं दरअसल एक निर्गुण और अव्यवस्थित सपने को स्कूल में सगुण देखना चाहता था। मैं नसीराबाद में सबसे छोटा मास्टर था और आयु की दृष्टि से अविश्वसनीय रूप से छोटा हेडमास्टर। शायद यही कारण हो कि मुझसे किसी की प्रतिस्पर्धा नहीं थी। वे मुझे कामयाब होते देखना चाहते थे। शायद मैं उनके लिए कोई गंभीर चुनौती भी नहीं था।

'न्यू इंग्लिश स्कूल' के विद्यार्थी मराठी स्कूल से सातवीं कक्षा पास कर चुके थे और स्कूल न होने के कारण खेतों में काम करने लगे थे। वे जलगांव जाकर पढ़ने की स्थिति में नहीं थे। स्कूल के खुलते ही उनमें पढ़ने की उमंग फिर पैदा हो गई और वे अपनी बढ़ती हुई आयु को भूलकर फिर से पढ़ने लगे। न्यू इंग्लिश स्कूल में ज्यादा लड़के किसानों के थे। छोटी आयु का होने के कारण विद्यार्थियों के और मेरे बीच सहज सखा भाव नजर आता था लेकिन शायद असली खुशी की बात तो उन खिड़कियों के खुल जाने की थी जो उनके

लेखक परिचय

राजस्थान के जान-माने कवि, सहित्यकार। लम्बे समय तक उदयपुर स्थित 'विद्या भवन संस्थान में अध्यापन, लम्बे समय तक सीताराम सैकसरिया शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रध्यापक के रूप में कार्य। राजस्थान साहित्य अकादमी से मीरा पुरस्कार एवं बिहारी सम्मान प्राप्त। चिन्तन प्रधान साहित्य पत्रिका 'बिन्दु' का संपादन।

पुस्तक : 'उत्सव का निर्मम समय' और 'शब्द संसार की यायावरी'

संपर्क : 30, अहिंसापुरी, उदयपुर-312004

लिए बहुत पहले बंद हो चुकी थीं। ये लड़के पढ़ाई से मिलने वाली हैसियत और प्रतिष्ठा का मर्म जानते थे।

मैं मराठी नहीं जानता था लेकिन नसीराबाद भाषायी कट्टरतावाद से मुक्त था। भारत का बड़प्पन उसकी सहिष्णुता में है, गो कि वह निहित स्वार्थों के पक्ष में नहीं होती इसलिए उसके विरुद्ध साजिशें कामयाब होती हैं। कट्टरवादी लोग सहिष्णुता को कायरता कहते हैं-नसीराबाद पुराने खानदेश का हिस्सा है जिसकी भाषा-संस्कृति में मराठी, उर्दू, हिंदी अजीब तरह से मिल गई हैं और यही कारण था कि भाषा के कारण मेरे और विद्यार्थियों के बीच अपरिचय की कोई दीवार नहीं थी।

1946 का नसीराबाद कांग्रेस के पक्ष का था और मेरे लिए यह समझना बहुत मुश्किल था कि गांधी-विरोध की राजनीति करने वालों का मुखिया कौन है ? और उनका मुद्दा क्या है ? यह जानना मेरे लिए अमहत्त्वपूर्ण और अनावश्यक था। मेरी प्रतिबद्धता एक ऐसे स्कूल के लिए थी जहां विद्यार्थियों की अच्छी पढ़ाई हो और उनमें वह दृष्टि और विवेक पैदा किया जाए जो अच्छे और सभ्य समाज की रचना करता है। निःसंदेह मैं इन विद्यार्थियों को एक बड़े और स्वाधीन भारत के लिए समर्पित होते देखना चाहता था। मेरी जिंदगी के ये खूबसूरत और आदर्शपूर्ण दिन थे और न्यू इंग्लिश स्कूल उसका अविछिन्न, अविभाज्य हिस्सा था।

मैं इन विद्यार्थियों को नसीराबाद के सामाजिक जीवन में शामिल कर देना चाहता था क्योंकि मेरी दृष्टि में शिक्षा का कोई निरपेक्ष सत्य नहीं था। शिक्षा की खिड़की दुनिया में ही खुलती है। नसीराबाद की कई समस्याएं थीं; वहां हर साल हैजा फैल जाता था और लोग महीनों तक मौत की अंधेरी रात में रोते-बिलखते जीते थे। कस्बे के पास बहती नदी के किनारे खुले शौचालय थे। स्वास्थ्य और स्वच्छता के अभाव में पूरा कस्बा थका, उदास और बीमार लगता था। न्यू इंग्लिश स्कूल के सामने ही स्त्री-पुरुष जल्दी उठकर शौच के लिए बैठ जाते थे। लोग सड़े फल और सब्जियां खरीदते और खाते थे। मैं चाहता था नौजवान विद्यार्थी इस निष्प्रभ जीवन को देखें और उसे बदलने के लिए प्रभावशाली हस्तक्षेप करें।

आजादी का पहला उत्सव मैंने इन विद्यार्थियों के साथ ही मनाया था। मराठी स्कूल में विद्यार्थियों, अध्यापकों-अध्यापिकाओं और किसान नेताओं की भीड़ लग गई थी। 'वंदे मातरम्' और 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' के गीत गाते लड़कियां-लड़के नसीराबाद की सड़कों-बाजारों को अनुगुंजित करते रहे।

लेकिन सब कुछ ठीक नहीं हुआ था। अंग्रेज अंत में कामयाब हुए थे और देश दो टुकड़ों में बंट गया था। लोहिया के शब्दों में यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आखिरी साजिश थी। हिंदू-मुसलमानों के बीच रिश्तों की पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना का यह अत्यंत मार्मिक और पेचीदा समय था।

नसीराबाद में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों से मैं नावाकिफ था। लेकिन गणेश विसर्जन के समय वहां सांप्रदायिक तनाव और दंगों के बारे में मैंने सुना था। दंगे की शैली जानी-पहचानी थी और उसके कारण सुविदित थे। हिन्दू मस्जिद के सामने से बाजे बजाते हुए निकलने पर अड़ जाते थे और मुसलमान उस पर घमासान मचा देते थे। यह कोई धर्म का सवाल नहीं था। यह एक किस्म का आतंकवादी नस्लवाद था। हत्यारे इस बहाने से हथियार इकट्ठे कर लेते थे और सभ्य शांतिप्रिय लोगों को डराते थे। मैं नसीराबाद में मस्जिद के पास ही रहता था। मेरे रहते वहां कोई सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए। भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी के दिनों में कटुता नहीं फैली। दरअसल यहां के मुसलमान गरीब हिंदुओं से भी ज्यादा गरीब थे। वे गाड़ियां हांकने वाले थे या हमाल या फिर अमीर हिंदुओं के 'मलों' (बगीचों) में चौकीदार थे। न्यू इंग्लिश स्कूल में सिर्फ एक मुसलमान लड़का पढ़ता था जो अमीर खानदान का था। गरीब मुसलमान को बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना का नाम मालूम नहीं था। वे गांधीजी को जानते थे।

अजमेर में मैं एक बार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में गया था। कोई एक सज्जन जो महाराष्ट्र के थे, संघ की गतिविधियां देखते थे। वे अक्सर 'हिंदू-एकता' की और भारत के 'महान अतीत' की बातें करते। उनकी बातें मुझे भावुकतापूर्ण और रूमानी लगती, तब भी भारत की महानता मुझे अंसदिग्ध भाव से आकर्षित करती, जो अब भी करती है।

नसीराबाद (खानदेश) में मुझे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ताकत का और उसकी राजनीति का कोई अंदाजा या ज्ञान नहीं था। मुझे ज्यादातर लोग कांग्रेस पक्ष के ही लगते थे। तब भी शाखा में एक बार प्रवचन देने जाना पड़ा। शाखा में सम्मिलित होने वाले अधिकांश लड़के 'किशारे-वय' के थे। किसी 'मतवाद' में दीक्षित करने के लिए यह आयु बहुत उपयोगी थी। दुबारा मैं शाखा में तो नहीं लेकिन एक ऐसी सभा में बुलाया गया जिसकी कार्य-शैली लोकतंत्रात्मक और खुली नहीं थी। यह सभा रात के समय किसी सज्जन के घर पर की गई थी। जो लोग आए थे वे गरीब या किसान नहीं थे। उनमें से अधिकांश काली टोपियां लगाए थे। मराठी में बातचीत करने के कारण मुझे अपना अजनबीपन लगातार अनुभव होता रहा।

मैंने राष्ट्रीय संघ के सरसंघ चालक गोलवलकर का भाषण जलगांव में सुना था, जहां गांधी-हत्या के बाद भीषण दंगा हुआ था और संप्रदायवादियों के घर जला दिए थे। गोलवलकर घोड़े पर बैठे थे।

काले बंद गले के शेरवानीनुमा कोट और दुलंगी धोती में वे ज्यादा रोबीले नहीं लगते थे। उनका घोड़ा राणाप्रताप या शिवाजी की तरह चंचल या स्फूर्तिवान नहीं था। गोलवलकर को राजनेताओं की तरह सजाया भी नहीं गया था। उनके चेहरे की प्रतिक्रिया समझना मुश्किल था क्योंकि उनके मुंह का ज्यादा हिस्सा उनकी लंबी दाढ़ी से ढका था। उनके लंबे काले बाल कंधे तक लहरा रहे थे।

गोलवलकरजी का प्रवचन खुले और विशाल मैदान में आयोजित था। श्रोताओं को कतारबद्ध बैठा दिया गया था और उन्हें सामान्य श्रोताओं की तरह आचरण करने की आजादी नहीं थी। काली टोपी, आधी बांह का शर्ट और हाथ में लाठी लिए स्वयंसेवक मुस्तैदी से निगरानी कर रहे थे। सुई गिरे तो उस तक की आवाज सुनाई दे- ऐसी शांति, व्यवस्था और अनुशासन के बीच गुरुजी बोले। उनका भाषण दृढ़तापूर्ण, उद्वेग-रहित और हिंदू राज बनाने के लिए स्फूर्ति देने वाला था। इस सभा में गोलवलकर सेना-नायक और 'संपूर्ण सत्य' को वे जानते हों, इस तरह के अविचलित और अहंकार भाव से बोले थे। नसीराबाद के संभ्रांत और धनी लोग इस सभा में आए थे जिन्हें मैं वहां नहीं देख सका था। क्या वे राजनीति की दुनिया के आदमी थे, 'संघ परिवार' के समर्थक ? 'मलों (बगीचों) के मालिक ?

कुछ समय बाद न्यू इंग्लिश स्कूल में एक अध्यापक की नियुक्ति की गई, यह नौजवान अध्यापक 'न्यू इंग्लिश स्कूल सोसायटी' के अध्यक्ष का साला था। वह काली टोपी पहनता था। मुझसे कहीं जल्दी स्कूल के नौजवान विद्यार्थी इस अध्यापक की निष्ठाओं को भांप गए थे। वे जान गए कि वह एक 'खास किस्म' के हिंदू हितों का प्रतिनिधि है। शायद वे उसकी गतिविधियों की चौकसी भी करने लगे।

30 जनवरी की संध्या को गांधी की हत्या कर दी गई। यह खबर एक अविश्वसनीयता और गहरे विषाद के साथ इस छोटे से कस्बे में फैल गई। कोरान्ने (न्यू इंग्लिश स्कूल सोसायटी के अध्यक्ष का साला और अध्यापक) ने हत्या पर प्रसन्न होकर पेड़े बांटे, यह खबर भी आग की तरह फैल गई। कस्बे में शोक और असहनीय नाराजगी फैली हुई थी। शाम होते-होते मुझे किसी अकल्पित हिंसा, नाराजगी, लूट-पाट की आशंका होने लगी। मुझे भय लगने लगा कि इन दंगों में न्यू इंग्लिश स्कूल के नौजवान छात्रों की ही अगुवाई न हो। मैं नितांत अकेला हो गया था। नेहरू ने ठीक ही कहा था कि 'देश अंधेरे में डूब गया है, लेकिन हिंसा का प्रतिकार हिंसा से नहीं हो सकता।'

मैं कुछ कर सकता हूं तो करूं

एक असहाय आदमी की तरह मैं भागकर पुलिस स्टेशन गया, जहां एक बेफ्रिक सिपाही तिपाई पर पैर फैलाए बैठा था। उसने लापरवाही से पूछा- 'क्या बात है हेडमास्टर ?' मैंने कहा कि गांधीजी की हत्या कर दी गई है और दंगा हो सकता है। फुर्ती से इंतजाम करो। यह कहकर मैं मुख्य बाजार में आ गया। मस्जिद के पास उग्र भीड़ इकट्ठी थी जहां न्यू इंग्लिश स्कूल सोसायटी के अध्यक्ष रामभाऊ कुलकर्णी रहते थे और वहीं उनकी डिस्पेंसरी थी। सड़क पर बेइंतहा, अंधेरा फैला हुआ था और लोग नारे लगा रहे थे। वे पूछ रहे थे कि कोरान्ने कहां है ? पेड़े किसने बांटे थे ? गांधी के हत्यारे कहां छिपे हैं ? डिस्पेंसरी की टूटी बोतलें, बिजली की तार सड़क पर पड़े थे।

यह इम्तहान था। मैंने तुरंत निर्णय लिया और भीड़ को धकेल कर डिस्पेंसरी के दरवाजे पर खड़ा हो गया। मैंने वह मानवीय अपील अपने विद्यार्थियों से ही की थी जिसमें प्राण तक देने का निश्चय था। मैंने कामयाबी हासिल की। तब भी भीड़ छुटपुट हमले करती हुई बिखर गई। हमले अभिजनों के घरों पर ही हुए थे। मुझे खुशी थी कि उस हिंसा और आगजनी के समय मैं उस कस्बे को गंभीर नुकसान से बचा सका, जहां मैं सामान्य अध्यापक था।

गांधी की हत्या गोडसे नाम के एक आदमी ने की थी। वह प्रार्थना सभा में हुई थी। मृत्यु के समय गांधी ने अपराजित योद्धा की तरह आत्मबल और पुरुषार्थ का परिचय दिया। उन्होंने 'हे राम' कह कर प्राण दिए। यह एक हिन्दू द्वारा दूसरे हिन्दू की हत्या थी।

गांधी हत्या के कारणों का विश्लेषण करते हुए लोहियाजी ने लिखा था-गांधीजी की हत्या हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष को लेकर उनकी मान्यताएं मात्र नहीं है। इसके पीछे हिन्दू समाज में चला आ रहा उदारमतवाद और कट्टरतावाद का सबसे हीन जुआ था यह हत्या।

वर्ण वर्चस्व के विरोध में और स्त्रियों के पक्ष में तथा धन-संपत्ति के विरोध में और सहिष्णुता के पक्ष में किए जा रहे गांधीजी के कामों से संतप्त हुए व्यक्तियों ने गांधीजी की हत्या की है।

यह दुःख और निराशा की बात है कि गांधी हत्या के प्रसंग धुंधला दिए गए हैं जबकि देश में कट्टरतावाद की राजनीति, संस्कृति, अर्थ नीति, उत्पीड़न और क्रूरता के कई हुनर और कौशल विकसित कर चुकी हो और हत्यारे अपने नए-नए नाट्य मंचों पर उपस्थित हो रहे हों। ◆

नंद चतुर्वेदी की पुस्तक **'अतीत राग'** से साभार